भारत में उच्च शिक्षा : निजीकरण, गुणवत्ता और शिक्षक कल्याण की चुनौतियाँ

डॉ. सौरभ मौर्या
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र
श्री मंहत रामाश्रय दास पी.जी. महाविद्यालय,भुड़कुड़ा,गाजीपुर.

भारत में उच्च शिक्षा का क्षेत्र पिछले कुछ दशकों में बड़े बदलावों से गुजरा है। एक समय यह सार्वजनिक संस्थानों और विश्वविद्यालयों पर आधारित था, जो शिक्षा को एक सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में देखते थे, वहीं अब यह क्षेत्र तीव्र गति से निजीकरण की ओर अग्रसर हो गया है। इस परिवर्तन का सीधा प्रभाव शिक्षा की गुणवत्ता, पहुंच, समानता और सबसे महत्वपूर्ण – शिक्षकों की स्थिति पर पड़ा है। निजी संस्थानों की बढ़ती संख्या, PPP मॉडल का प्रचलन, और शिक्षकों के अस्थायी पदों की भरमार ने एक गंभीर बहस को जन्म दिया है कि क्या भारत में शिक्षा सेवा है या व्यापार?

भारत में निजीकरण की इस लहर को सरकारों ने 'सुधार' और 'नवाचार' के नाम पर प्रोत्साहित किया है। 1991 के आर्थिक उदारीकरण के बाद, शिक्षा को सेवा क्षेत्र का एक हिस्सा मानते हुए इसे बाजार के लिए खोल दिया गया। निजी विश्वविद्यालय, डीम्ड विश्वविद्यालय, निजी कॉलेज और अब शिक्षा में सार्वजनिक-निजी भागीदारी (PPP मॉडल) के तहत बने संस्थान इसका स्पष्ट उदाहरण हैं। भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान (IIITs), विशेषकर PPP मॉडल पर आधारित संस्थान, जैसे IIIT-Hyderabad, गुणवत्ता के लिहाज से उल्लेखनीय उदाहरण हैं। परंतु ये संस्थान बहुसंख्यक भारतीय विद्यार्थियों की पहुँच से बाहर हैं, क्योंकि इनकी फीस संरचना और प्रवेश नीति अपेक्षाकृत विशिष्ट और व्यावसायिक है।

इइइ मॉडल की सफलता पर तर्क दिए जाते हैं कि इससे संसाधनों की उपलब्धता बढ़ती है, उद्योगों की भागीदारी से पाठ्यक्रम अधिक व्यावहारिक बनते हैं और शिक्षा का स्तर अंतरराष्ट्रीय मानकों से मेल खाने लगता है। परंतु दूसरी ओर, यह भी एक सच्चाई है कि इस मॉडल में शिक्षा को सेवा नहीं, बल्कि उत्पाद के रूप में देखा जाता है। निजी निवेशक लाभ के उद्देश्य से संस्थान स्थापित करते हैं, जिससे शिक्षा की सार्वभौमिकता और समानता पर प्रभाव पड़ता है। ग्रामीण और पिछड़े वर्गों के छात्र, जो पहले सरकारी विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में न्यूनतम शुल्क पर पढ़ाई कर पाते थे, अब महंगे संस्थानों की चौखट पर खड़े होकर केवल सपना ही देख सकते हैं।

निजीकरण का दूसरा पहलू शिक्षकों की स्थिति से जुड़ा है। उच्च शिक्षा में गुणवत्तापूर्ण अध्यापन और अनुसंधान के लिए स्थायित्व, सम्मानजनक वेतन, अनुसंधान अनुदान, और अकादमिक स्वतंत्रता आवश्यक है। परंतु आज निजी विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति ठेका आधारित, अल्पकालिक और कम वेतन वाली होती है। इसके परिणामस्वरूप न केवल योग्य लोग शिक्षा से विमुख हो रहे हैं, बल्कि जो शिक्षक कार्यरत हैं, वे भी मानसिक अस्थिरता और असंतोष के शिकार हैं। उनके पास न तो स्थायी सेवा का आश्वासन है, न शोध की सुविधा, न ही अकादमिक उन्नति की स्पष्ट राह।

सरकारी संस्थानों की स्थिति भी संतोषजनक नहीं रही। वर्षों से पद रिक्त पड़े हैं, नियमित नियुक्तियाँ ठप्प हैं, और कार्यरत शिक्षकों पर भारी कार्यभार है। UGC द्वारा तय मापदंडों का पालन अक्सर नहीं होता। उच्च शिक्षण संस्थानों में अनुबंध आधारित पदों की संख्या बढ़ रही है, जिससे शिक्षकों की सामाजिक सुरक्षा और भविष्य की स्थिरता पर गंभीर प्रश्न उठते हैं। नैतिक दृष्टि से भी यह चिंतनीय है कि जो शिक्षक भावी पीढ़ी को तैयार करते हैं, वे स्वयं अस्थिर भविष्य की ओर देख रहे हैं।

सरकारों द्वारा नई शिक्षा नीति (2020) के अंतर्गत उच्च शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने के लिए अनेक उपायों की बात की गई है, जिनमें मल्टी-डिसिप्लिनरी संस्थानों की

स्थापना, रिसर्च पर बल, और डिजिटल शिक्षा का विस्तार शामिल हैं। परंतु यह सुधार तभी संभव है जब शिक्षक समुदाय को संरक्षित, सम्मानित और सशक्त किया जाए। यदि शिक्षा को नवाचार, शोध और वैश्विक प्रतिस्पर्धा में अग्रणी बनाना है तो शिक्षकों की भूमिका केंद्रीय होनी चाहिए।

शिक्षा में गुणवत्ता का एक मापदंड शिक्षक-छात्र अनुपात भी है, जो वर्तमान में कई संस्थानों में असंतुलित है। अनुबंध आधारित नियुक्तियाँ, अतिथि अध्यापक मॉडल और तदर्थ व्यवस्था स्थायित्व को नकारती हैं। शिक्षकों को बेहतर वेतन, स्थायी सेवा, पदोन्नति की नीति, और अकादमिक स्वतंत्रता मिले – यह एक स्वस्थ शिक्षण वातावरण की आवश्यकता है। इसके लिए सरकार को 'शिक्षा निवेश' की अवधारणा को 'लाभ निवेश' से अलग करके देखना होगा।

उच्च शिक्षा केवल रोजगार प्राप्त करने का माध्यम नहीं होती, वह नागरिकों में विवेक, जिम्मेदारी, आलोचनात्मक सोच और रचनात्मकता को भी विकसित करती है। अतः इसके व्यावसायीकरण को सीमित करना होगा। शिक्षा को जनसेवा के रूप में पुनः प्रतिष्ठित करना होगा, जहाँ शिक्षा संस्थान केवल डिग्री देने का केंद्र न होकर बौद्धिक विकास और सामाजिक समरसता के केंद्र बनें।

इसी दिशा में यह आवश्यक हो गया है कि सरकारें केवल निजी क्षेत्र पर निर्भर न रहें, बल्कि खुद सार्वजनिक और सहकारी संस्थानों को सशक्त करें। विश्वविद्यालयों में संसाधनों की कमी दूर हो, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, और शोध अनुदान जैसे पहलुओं को प्राथमिकता मिले। शिक्षा बजट को GDP का कम से कम 6% तक बढ़ाया जाए, जैसा कि अनेक आयोगों ने सुझाया है। विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में शिक्षकों की नियुक्ति नियमित रूप से हो, रिक्त पद शीघ्र भरे जाएँ, और नियुक्ति प्रक्रिया पारदर्शी एवं योग्यता आधारित हो।

आज भारत को विश्वगुरु बनने की आकांक्षा है, लेकिन यह आकांक्षा केवल IITs या IIMs से पूरी नहीं हो सकती। यह तभी संभव है जब देश के हर ज़िले में स्थापित कॉलेज और विश्वविद्यालय भी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा दें, और वहाँ कार्यरत शिक्षक अपने कार्य में संतुष्टि और सम्मान अनुभव करें। इसके लिए शिक्षा नीति को शिक्षक केंद्रित बनाना होगा।

शिक्षकों के कल्याण के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक नीति की आवश्यकता है, जो निम्न बिंदुओं को समाहित करेः

* शिक्षकों की नियुक्ति में पारदर्शिता और नियमितता
* सभी स्तरों पर स्थायी सेवा और पेंशन व्यवस्था
* शोध एवं अकादमिक कार्यों के लिए अनुदान
* कार्यस्थल पर गरिमा, सुरक्षा और योग्यता के अनुसार वेतन
* मूल्यांकन आधारित पदोन्नति प्रणाली

इसके साथ ही, सहकारी शिक्षण संस्थानों की अवधारणा को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। शिक्षक, विद्यार्थी और समाज मिलकर ऐसे संस्थान चला सकते हैं जो मुनाफा आधारित नहीं, बल्कि ज्ञान आधारित हों। इससे शिक्षा का लोकतंत्रीकरण होगा और शिक्षा की पहुँच अधिक व्यापक बन सकेगी।

भारत में शिक्षा को संविधान ने मौलिक अधिकार के रूप में स्वीकार किया है। अतः इसे बाज़ार में सौदेबाजी की वस्तु नहीं बनने दिया जा सकता। एक ऐसे समय में जब तकनीक, वैश्वीकरण और प्रतिस्पर्धा के युग में शिक्षा की भूमिका और बढ़ गई है, सरकार को चाहिए कि वह शिक्षा को एक लोकनीति के रूप में देखे, न कि केवल बाज़ार की माँग के अनुसार संचालित क्षेत्र के रूप में।

वास्तव में भारत में उच्च शिक्षा का निजीकरण यदि नियंत्रित नहीं किया गया, तो इससे शिक्षा की गुणवत्ता, शिक्षक समुदाय की गरिमा और सामाजिक समरसता पर गंभीर संकट आ सकता है। सरकार को एक संतुलित नीति अपनानी होगी जिसमें सार्वजनिक, निजी और सहकारी तीनों मॉडल हों, पर प्राथमिकता उस मॉडल को दी जाए जो शिक्षा को सेवा, समता और संप्रेषण का माध्यम मानता हो, न कि लाभ कमाने का अवसर।

शिक्षकों का कल्याण केवल एक समूह का हित नहीं है, बल्कि राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया का मूल स्तंभ है। जब शिक्षक स्थायित्व और आत्मसम्मान के साथ कार्य करेगा, तभी वह विद्यार्थियों में वही मूल्य और विवेक भर सकेगा, जो भारत को एक प्रबुद्ध और शक्तिशाली राष्ट्र बना सकते हैं। यही समय है जब हम शिक्षा को पुनः 'विधा' मानकर उसकी गरिमा और व्यापकता को स्थापित करें।

***